नियमसार, १७० कलश।

जयति सहज-तेजःप्रास्त-रागान्धकारो,
मनसि मुनिवराणां गोचरः शुद्धशुद्धः।
विषय-सुख-रतानां दुर्लभः सर्वदायं,
परम-सुख-समुद्रः शुद्धबोधोऽस्तनिद्रः ।।१७०।।

आलोचना का अधिकार है। आत्मा को इस प्रकार से आलोचना अर्थात् देखना अर्थात् मानना आदि अनुभव करना। किस प्रकार ?

[श्लोकार्थः] जिसने सहज तेज से... जिसने सहज स्वरूप के **तेज से रागरूपी अन्धकार का नाश किया है,...** अर्थात् कि उसमें राग है नहीं। वस्तुस्वरूप है, वीतरागस्वरूप है। आत्मा अनादि वीतरागस्वरूप ही है। उसके आश्रय से रागरूपी अन्धकार का नाश होता है, तो उसके तेज से नाश हुआ – ऐसा कहा जाता है। द्रव्य, वह कहीं पर्याय को करता नहीं है। द्रव्य तो ध्रुव शुद्ध आनन्दधन नित्यानन्द प्रभु, जिसमें हलन-चलन और पर्याय भी नहीं। उस रागरूपी अन्धकार को जिसका तेज अर्थात् जिसके तेज की दृष्टि करने पर राग का नाश होता है, तो वह स्वयं राग का नाश करता है – ऐसा कहा जाता है।

जो मुनिवरों के मन में वास करता है,... आहाहा! जो मुनिवरों के हृदय में-ज्ञान में बसता है। वह आत्मा ज्ञान में, ज्ञान की पर्याय में बसता है। उसकी पर्याय में, राग या व्यवहार, (वह) मुनिवरों के ज्ञान में बसता नहीं। आहाहा! मन में अर्थात् मुनिवरों के ज्ञान में बसता है। **जो शुद्ध-शुद्ध है,...** वस्तु से शुद्ध है, गुण से शुद्ध है, द्रव्य से शुद्ध है और गुण से शुद्ध है। भाव-स्वभाव से शुद्ध है और स्वभाववान, वह शुद्ध है और स्वभाव से भी शुद्ध है। **जो विषयसुख में रत जीवों को...** आहाहा! जिनें पाँच इन्द्रियों की विषयों की ओर की सन्मुखता में, झुकाव में रस है, उन **जीवों को सर्वदा दुर्लभ है,...** जिनका खिंचाव पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर जाता है, उन्हें वह चीज़ दुर्लभ है। क्योंकि उनके लक्ष्य से या आश्रय से वह प्राप्त नहीं होता। **विषयसुख में रत जीवों को...** अतीन्द्रिय आनन्द सुखरूपी प्रभु! विषय अर्थात् पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाव में सुखबुद्धिवाले जीव को अत्यन्त दुर्लभ है। (सर्वथा) दुर्लभ है। **सर्वदा दुर्लभ है,...** आहाहा!

जो परम सुख का समुद्र है,... परम अतीन्द्रिय आनन्द, उसका तो वह समुद्र है। अपार बेहद अपरिमित सुखसमुद्र से भरपूर है। आहाहा! अन्यत्र सर्वत्र से सुखबुद्धि उठाकर जहाँ सुख है, वहाँ बुद्धि को लगाना, यह महादुर्लभ है। **जो परम सुख का समुद्र है, जो शुद्ध ज्ञान है...** सुख है और ज्ञान है। सर्वत्र दो की मुख्यता वर्णन करते हैं न ? **जो शुद्ध ज्ञान है...** शुद्ध ज्ञान शब्द से, जिसमें राग तो नहीं, परन्तु पर्याय नहीं—ऐसा शुद्ध ज्ञानपिण्ड प्रभु है।

तथा जिसने निद्रा का नाश किया है,... आहाहा! स्वरूप का भान होने पर निद्रा में भी उसका भान रहा करता है और उसने निद्रा का नाश किया है। आहाहा! जो चैतन्य सत्ता अस्तित्वरूप भासन हुआ, वह भासन उसकी निद्रा में भी भासन कायम रहता है। वास्तव में जो उसने निद्रा का नाश किया है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगावान आत्मा का जिसे भान है, उसने निद्रा का नाश (किया) है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। **ऐसा यह (शुद्ध आत्मा)....** मुनिराज स्वयं कहते हैं। यह जो कहता हूँ, वह मेरे ज्ञान में जयवंत वर्तता है। बिना देखे जयवंत वर्तता है - ऐसा नहीं कहता, यह कहते हैं। अनुभव करके कहता हूँ कि यह जयवंत वर्तता है। आहाहा! द्रव्य जयवन्त वर्तता है, इसका अर्थ (यह कि) अनुभव की पर्याय में ज्ञात होता है, वह सदा ही जयवंत वर्तता है। आहाहा! उसका कभी अभाव नहीं है, उसमें कभी हीनता या विकार नहीं है। सदा शुद्ध ज्ञान, निद्रा का नाश करके जयवंत वर्तता है।

जयवन्त वर्तता है अर्थात्? पर्याय में उसका भान होता होने से, वह जितना और जैसा है, उतना और वैसा ही उसमें ज्ञान—श्रद्धान होने से, वह ज्ञान और श्रद्धा ऐसा कहते हैं कि वह तो जयवन्त वर्तता है। मेरी दृष्टि के विषय में तैरता है। आहाहा! पारिणामिकभाव से शुद्ध है, ऐसा अकेला नहीं परन्तु उसका भान होने से जयवन्त वर्तता है, ऐसा उसके ज्ञान में आया है। आहाहा! वस्तु स्वयं जयवन्त वर्तती है। पर्यायदृष्टि छोड़कर जिसने द्रव्यदृष्टि की है, उसे तो जयवन्त वर्तता है। शाश्वत् अनुभव में आया है, इसलिए अनुभव कहता है कि वह जयवन्त वर्तता है। वस्तु, वह तो कायम ऐसी की ऐसी है। आहाहा! ऐसा है। यह बाहर के झगड़े के कारण अन्दर में जाने का समय नहीं मिलता। यह अब कहेंगे।

गाथा-११२

मदमाणमायलोहविवज्जियभावो दु भावसुद्धि त्ति।
परि-कहियं भव्वाणं लोयालोय-प्पदरिसीहिं।।११२।।

मदमानमायालोभविवर्जितभावस्तु भावशुद्धिरिति।
परि-कथितो भव्यानां लोकालोक-प्रदर्शिभिः।।११२।।

भावशुद्ध्यभिधानपरमालोचनास्वरूपप्रतिपादनद्वारेण शुद्धनिश्चयालोचनाधिकारोप-संहारोपन्यासोऽयम्। तीव्रचारित्रमोहोदयबलेन पुम्वेदाभिधाननोकषायविलासो मदः। अत्र मदशब्देन मदनः कामपरिणामः इत्यर्थः। चतुरसन्दर्भगर्भीकृतवैदर्भकवित्वेन आदेयनाम-कर्मोदये सति सकलजनपूज्यतया, मातृपितृसम्बन्धकुलजातिविशुद्ध्या वा, शतसहस्रकोटि-भटाभिधानप्रधानब्रह्मचर्यव्रतोपार्जितनिरुपमबलेन च, दानादिशुभकर्मोपार्जितसम्पत्वृद्धि-विलासेन अथवा बुद्धितपोवैकुर्वणौषधरसबलाक्षीणर्द्धिभिः सप्तभिर्वा, कमनीयकामिनी-लोचनानन्देन वपुर्लावण्यरसविसरेण वा आत्माहङ्कारो मानः। गुप्तपापतो माया। युक्तस्थले धनव्ययाभावो लोभः, निश्चयेन निखिलपरिग्रहपरित्यागलक्षणनिरञ्जननिजपरमात्मतत्त्व-परिग्रहात् अन्यत् परमाणुमात्रद्रव्यस्वीकारो लोभः।

एभिश्चतुर्भिर्वा भावैः परिमुक्तः शुद्धभाव एव भावशुद्धिरिति भव्यप्राणिनां लोकालोक-प्रदर्शिभिः परमवीतरागसुखामृतपानपरितृप्तैर्भगवद्भिरर्हद्भिरभिहित इति।

अर्हंत लोकालोक दृष्टा का कथन है भव्य को—
है भाव-शुद्धि मान, माया, लोभ, मद बिन भाव जो॥११२॥

अन्वयार्थ : [मदमानमायालोभविवर्जितभावः तु] मद (मदन), मान माया और लोभ रहित भाव वह [भावशुद्धिः] भावशुद्धि है [इति] ऐसा [भव्यानाम्] भव्यों को [लोकालोकप्रदर्शिभिः] लोकालोक के दृष्टाओं ने [परिकथितः] कहा है।

टीका : यह, भावशुद्धिनामक परम-आलोचना के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा शुद्ध निश्चय-आलोचना अधिकार के उपसंहार का कथन है।

तीव्र चारित्रमोह के उदय के कारण पुरुषवेद नामक नोकषाय का विलास वह मद है। यहाँ 'मद' शब्द का अर्थ 'मदन' अर्थात् कामपरिणाम है। (१) चतुर वचन-रचनावाले *वैदर्भकवित्व के कारण, आदेयनामकर्म का उदय होने पर समस्त जनों द्वारा पूजनीयता से, (२) माता-पिता सम्बन्धी कुल-जाति की विशुद्धि से, (३) प्रधान ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा उपार्जित लक्षकोटि सुभट समान निरुपम बल से, (४) दानादि शुभकर्म द्वारा उपार्जित सम्पत्ति की वृद्धि के विलास से, (५) बुद्धि, तप, विक्रिया, औषध, रस, बल और अक्षीण—इन सात ऋद्धियों से, अथवा (६) सुन्दर कामिनियों के लोचन को आनन्द प्राप्त करनेवाले शरीरलावण्यरस के विस्तार से होनेवाला जो आत्म-अहंकार (आत्मा का अहंकारभाव) वह मान है। गुप्त पाप से माया होती है। योग्य स्थान पर धनव्यय का अभाव वह लोभ है; निश्चय से समस्त परिग्रह का परित्याग जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसे निरंजन निज परमात्मतत्त्व के परिग्रह से अन्य परमाणुमात्र द्रव्य का स्वीकार वह लोभ है।—इन चारों भावों से परिमुक्त (-रहित) शुद्धभाव वही भावशुद्धि है ऐसा भव्य जीवों को लोकालोकदर्शी, परमवीतराग सुखामृत के पान से परितृप्त अरहन्त भगवन्तों ने कहा है।

गाथा - ११२ पर प्रवचन

११२ गाथा।

मदमाणमायलोहविवज्जियभावो दु भावसुद्धि त्ति।
परि-कहियं भव्वाणं लोयालोय-प्पदरिसीहिं।।११२।।

तीन लोक के नाथ लोकालोक को जाननेवाले, उन्होंने आत्मा को भावशुद्धि से देखा है। **टीका : यह, भावशुद्धिनामक परम-आलोचना के स्वरूप के...**

अर्हंत लोकालोक दृष्टा का कथन है भव्य को—
है भाव-शुद्धि मान, माया, लोभ, मद बिन भाव जो॥११२॥

---

* वैदर्भकवि=एक प्रकार की साहित्यप्रसिद्ध सुन्दर काव्यरचना में कुशल कवि।

जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ है ही नहीं, ऐसा जो भगवान शुद्ध वर्तता है। आहाहा! **तीव्र चारित्रमोह के उदय के कारण पुरुषवेद नामक नोकषाय का विलास...** आहाहा! विषय की वासना का विलास। यहाँ पुरुष को लिया है परन्तु स्त्री को भी स्त्री सम्बन्धी लेना। **चारित्रमोह के उदय के कारण पुरुषवेद नामक नोकषाय का विलास, वह मद है।** मद अर्थात् यहाँ अभिमान नहीं। मद अर्थात् मदन। आहाहा! अर्थात् काम विकार, ऐसा अर्थ है। जिसे काम विकार वर्तता नहीं, उसमें काम का विकार है ही नहीं। आहाहा! एक बात।

(१) चतुर वचन-रचनावाले वैदर्भकवित्व के कारण,... एक प्रकार की साहित्यप्रसिद्ध सुन्दर काव्यरचना में कुशल कवि। आहाहा! **आदेयनामकर्म का उदय होने पर समस्त जनों द्वारा पूजनीयता से,...** कवि तो ऐसी रचना करता है कि लोग फिदा-फिदा हो जाते हैं। यह भी एक मान है, कहते हैं। वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! उसके - मान के कामी को यह निर्मान चीज, वह दृष्टि में नहीं आती। आहाहा!

(२) माता-पिता सम्बन्धी कुल-जाति की विशुद्धि से,... उत्तम कुल का गर्व उसे होता है। मेरी माता उत्तम कुल की, पिता उत्तम कुल के, ऐसी विशुद्धि से जिसे गर्व वर्तता है। उसे हाथ नहीं आता। उसे उस चीज़ का पता नहीं लगता क्योंकि उस चीज़ में वह है नहीं। जो उसमें नहीं है, उसके द्वारा ख्याल में नहीं आता। आहाहा!

(३) प्रधान ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा... अन्दर का प्रधान ब्रह्म आनन्द, उसकी क्रीड़ा द्वारा **उपार्जित लक्षकोटि सुभट...** लाख कोटि का। **सुभट समान निरुपम बल से,...** ब्रह्मचर्य के जोर से उत्पन्न हुआ बल... आहाहा! उसका भी जिसे अभिमान नहीं है। उस अभिमानवाले को वह हाथ नहीं आता। आहाहा! आजीवन का ब्रह्मचर्य शरीर से नहीं परन्तु ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द में चरने के बल से शुभकोटि **लक्षकोटि सुभट...** लाख-करोड़ सुभट से भी जिसका बल ब्रह्मचर्य के कारण अन्दर बढ़ गया है। उसके बल से भी वह हाथ नहीं आता। उसका जिसे अभिमान वर्तता है, उसे वह हाथ नहीं आता क्योंकि उसमें वह है नहीं। आहाहा! थाह खोजी है। तल में चैतन्य ऐसा है, उसमें यह नहीं—ऐसा खोजा है। यह खोजा है, वह कहता है। लक्ष्यकोटि सुभट समान निरुपम बल, उसका का

भी जिसे अभिमान वर्तता है, वह अभिमान आत्मा में नहीं है। आहाहा! इसलिए उसके बल द्वारा भगवान आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

(४) दानादि शुभकर्म द्वारा... दान, पूजा, भक्ति से **शुभकर्म द्वारा उपार्जित सम्पत्ति की वृद्धि के विलास से,...** दान, पूजा, भक्ति आदि किये हों, उससे पुण्य बँधा हो, उस पुण्य के कारण सम्पत्ति बढ़ती ही जाए। वृद्धि विलास हो। उसका भी जिसे अभिमान है, उसे वह हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह उसमें है नहीं। आहाहा! **शुभकर्म द्वारा उपार्जित सम्पत्ति...** आहाहा! उसकी वृद्धि। करोड़ों-अरबों रुपये बढ़ जाए। महीने-महीने में अरबों की आमदनी बढ़ जाए। सहज-सहज अरबों हो जाए। उसका भी जिसे गर्व है, उसका भी जिसे महिमा / माहात्म्य है, वह वस्तु में नहीं है; इसलिए उसके द्वारा वस्तु हाथ नहीं आती। आहाहा!

(५) बुद्धि,... क्षयोपशमभाव के अभिमान द्वारा भी वह हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसमें वह है नहीं। जिसमें नहीं है, उसके द्वारा हाथ कैसे आवे। आहाहा! यह क्रोध, मान, माया, लोभ वस्तु में नहीं है। जिसमें हो, उसके द्वारा जानने में आवे। जिसमें जो हो, उसके द्वारा जानने में आवे। उसमें यह नहीं, उसके द्वारा जानने में नहीं आता। आहाहा! यहाँ तो जहाँ दो-पाँच हजार श्लोक कण्ठस्थ होते हैं, तो इसे ऐसा हो जाता है कि हमने ज्ञान किया और हम ज्ञान में बढ़ गये हैं। आहाहा! वह इसमें है ही नहीं, कहते हैं। बुद्धि का—क्षयोपशम का विलास, वह स्वरूप में है ही नहीं। उससे आत्मा हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

तप,... तप का अभिमान। छह-छह महीने के अपवास, छह महीने में भी रसरहित आहार करे। उसकी भी जिसे जरा वासना की गन्ध रह जाती है कि मैं भी कुछ तपस्वी (तप करनेवाला) हूँ, उसे यह वस्तु हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! **विक्रिया,...** शरीर की क्रिया, विक्रिया बनने में होशियार हो। शरीर की भाँति-भाँति की क्रिया - विक्रिया कर सके। उसका जिसे अभिमान है। उससे रहित जीव है, इसलिए उसके अभिमान से वह ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। **औषध,...** औषध का बल हो, बहुत जानकारी हो। औषध की बहुत जानकारी हो, उसका भी जिसे अभिमान है, उसे (आत्मा) ज्ञात हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसा हुआ कि डॉक्टरों को नहीं ज्ञात होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर। डॉक्टर-वॉक्टर है कौन ? आत्मा ज्ञानानन्द सहजस्वरूप है, उसमें डॉक्टर का पठन अन्दर में कहाँ है ? उसमें उस पठन का भी जरा... आहाहा ! अभिमान अन्दर रहे, वासना की गन्ध रहे, वह स्वरूप में नहीं है; इसलिए उससे स्वरूप ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा !

रस,... रस का बल हो। चाहे जैसा ऊँचा रस खा सकता हो, पचा सकता हो। चक्रवर्ती हीरा के भस्म के रस पचा सकता है। आहाहा ! जिसके बत्तीस ग्रास का एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सकते। उस रस को चक्रवर्ती पचाता है। आहाहा ! परन्तु उसे अभिमान नहीं है। यह हीरा की और माणिक की भस्म खा सकता हूँ और इसके कारण मुझे मेरे शरीर में बल बढ़ता है, ऐसी जिसे परसन्मुख की वासना की गन्ध है, उसे चैतन्य की गन्ध नहीं आती। आहाहा !

ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा, तथापि वह आत्मा हाथ नहीं आया क्योंकि वह तो परलक्षी ज्ञान है। आहाहा ! जिसे जानने के लिये ऐसी विशेषता की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे जानने के लिये तो उसके रागरहित, क्रोध, मान, माया, लोभरहित भाव से वह ज्ञात हो ऐसा है। जिसे ऐसे मद वर्तते हैं... आहाहा ! उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा !

बल,... शरीर का बल विशेष हो, आहाहा ! उससे भी वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। शरीर का बल बहुत जोरदार हो। आहाहा ! नेमिनाथ भगवान का (प्रसंग) आता है न ? सब सुभट सभा में एकत्रित हुए। बहुत महिमा करने लगे कि भीम जोरदार है, अर्जुन जोरदार है और अमुक जोरदार है। उसमें से एक व्यक्ति बोला कि परन्तु इन सबसे भगवान बैठे हैं। नेमिनाथ अभी गृहस्थाश्रम में थे। उनके शरीर के बल के समक्ष किसी का - दूसरे का बल विशेष नहीं है। भगवान को ऐसा कहा, इसलिए भगवान ने नीचे पैर रखा। कृष्ण उनके पैर को हटाने लगे, उठाने लगे। उठा नहीं सके परन्तु यह तो शरीर का बल है। उस बल का भी जिसे अभिमान है, उसे आत्मा हाथ आवे, ऐसा नहीं है। क्योंकि उसमें नहीं है।

आत्मा स्वभाव द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। अलिंगग्रहण में आता है न ? छठवाँ बोल। आहाहा ! अपने स्वभाव से प्रत्यक्ष ज्ञात हो, ऐसा आत्मा ज्ञाता है। आहाहा ! उसे कोई ऐसे साधन और बल की आवश्यकता नहीं है। ऐसे साधन में जिसे रस लगा होगा, वह आत्मा को नहीं जान सकता। आहाहा ! मुझे आता है, इसका अभिमान हो गया हो, क्षयोपशम ज्ञान

में, ज्ञान में यादगिरी बहुत रहती हो, उसका उसे अन्दर अहम्पना रहता हो, उससे आत्मा ज्ञात हो ऐसा नहीं है। आहाहा!

अक्षीण... ऐसी एक ऋद्धि होती है कि एक लड्डू हो, उसमें चक्रवर्ती छह खण्ड के छियानवें करोड़ मनुष्य जीम लें तो भी कम नहीं पड़े, ऐसी एक अक्षीण ऋद्धि है। उसका भी जिसे अभिमान नहीं है। यह तो जगत की चीज़ कर्म और प्रकृति के सब विकार हैं। आहाहा! एक लड्डू में से छियानवें करोड़ सैनिक जीम लें, ऐसी अक्षीण ऋद्धि प्रगट होती है, वह भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! उसमें नहीं है, इसलिए उससे वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। **इन सात ऋद्धियों से,...** जिसे अभिमान है।

अथवा (६) सुन्दर कामिनियों के लोचन को आनन्द प्राप्त करनेवाले शरीरलावण्यरस के विस्तार से... शरीर ऐसा रूपवान और सभी अवयव सुन्दर, ऐसे **सुन्दर कामिनियों के लोचन...** ऐसी सुन्दर स्त्रियों के **लोचन को आनन्द प्राप्त करनेवाले...** शरीर के लावण्य का रस। आहाहा! भगवान जन्मते हैं, तब से उन्हें रस ऐसा होता है, तथापि उन्हें अभिमान नहीं है। समकित लेकर आये हैं। आहाहा! जिन्हें हजार आँखें बनाकर इन्द्र देखता है। इन्द्र, जिसके पुण्य की ऋद्धि से इन्द्रपद मिला, वह भगवान के जन्म को, शरीर को देखता है। आँख से तृप्त नहीं होता तो हजार आँखें बनाता है। ऐसा जिनका शरीर है, उसका भी जिन्हें अभिमान नहीं है। वह तो परद्रव्य है। आहाहा! एक क्षण में पलटते हुए देरी नहीं लगती। यह नहीं उस महिला की बात की थी? रतिभाई के पुत्र की बहू बात करती थी, कहते हैं। बींछियावाले रतिभाई, खशालचन्दभाई का पुत्र। उसके पुत्र की बहू जवान। किसी के साथ बात करती थी। उसमें एकदम मस्तिष्क चढ़ गया। चढ़ गया और हेमरेज हो गया। हेमरेज होकर देह छूट गयी। आहाहा! कहो, शरीर की स्थिति कैसी, कैसे हो यह कहीं आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहाहा! जवान शरीर हो, २५, ३० वर्ष की जवान अवस्था। खाने-पीने से सब प्रकार से पूर्ण हो। उसके इन्द्रिय के लावण्य... ऐसी स्त्रियों के लोचन को आनन्द प्राप्त करानेवाले, ऐसे शरीर का लावण्य रस। शरीर की ऐसी कोमलता का रस, उसके विस्तार से होनेवाला अहंकार, आत्मा का अहंकार... आहाहा! कस्तूरी के चार लड्डू चढ़ा सकता हूँ, भस्म खा सकता हूँ, तो भी मुझे कुछ नहीं होता। ऐसी शरीर की स्थिति को, **सुन्दर कामिनियों के लोचन**

को आनन्द प्राप्त करनेवाले... आहाहा! उसका भी जो अहंकार, वह मान है। उस मानी को आत्मा हाथ नहीं आता। आहाहा! क्योंकि उस स्वरूप में मान है नहीं। ऐसी चीज़ का मान भी स्वरूप में नहीं है।

भगवान परमात्मस्वरूप के निधान की बातें क्या हो? ऐसा जिसे सुन्दर शरीर हो, उसका भी जिसे अहंकार नहीं। और होवे तो वह मान है। आहाहा! ऐसा कहना है कि ऐसे भाव से वह रहित है। भगवान ऐसे भाव से रहित है और ऐसे भाव के स्पर्श से भगवान ज्ञात हो, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा! बाह्य से-उदयभाव से मर गया है। वह उदयभाव स्वरूप में नहीं है, इसलिए जिसे मर गया है, उसे हाथ आता है। आहाहा! जिसमें जो नहीं, उसमें से वह हाथ आवे, वह वस्तु नहीं है। आहाहा! प्रभु का स्वभाव शुद्ध है, तो स्वभाव से हाथ आवे परन्तु ये सब चीज़ें जो विभाव है, उनसे हाथ नहीं आता, उनसे आत्मा नहीं ज्ञात होता। आहाहा!

गुप्त पाप से माया होती है। गुप्त पाप करके माया-कपट (करे), ऐसे को भी हाथ नहीं आता। **योग्य स्थान पर धनव्यय का अभाव, वह लोभ है;...** योग्य स्थल पर पैसा चाहिए, उस जगह खर्च करना चाहिए, उसके बदले मान में खर्च करे, वैश्या में खर्च करे, फूल में खर्च करे... आहाहा! वह एक राजा था न? बड़ा राजा है न? वह राजा मर गया। जिसके विवाह के एक रात में एक करोड़ खर्च किये। पहली रात में, एक रात में एक करोड़। आहाहा! उसमें तो उसे अन्दर कुछ होता होगा। आहाहा! हम कितने राजा और कितने... मर गया। उसके बदले दूसरा गद्दी पर बैठा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **योग्य स्थान पर धनव्यय का अभाव...** आहाहा! जहाँ चाहिए, वहाँ पैसे का लोभ घटावे नहीं। जहाँ चाहिए, जिसे आवश्यकता है, उस धर्म स्थल में उस पैसे को खर्च नहीं करे, वह योग्य स्थान का धन का अभाव, वह लोभ है। आहाहा! लड़के का विवाह करना हो तो पाँच लाख खर्च कर डाले, परन्तु कोई जरूरत पड़ी हो, मन्दिर की, देव-गुरु की रक्षा के लिये (आवश्यकता हो) तो वहाँ वह लोभ काम करे और खर्च नहीं करे, ऐसे जीव को आत्मा हाथ नहीं आता। आहाहा!

निश्चय से समस्त परिग्रह का परित्याग जिसका लक्षण है... वास्तव में तो यह सब परिग्रह है। आहा! यहाँ तो जहाँ अरब, दो अरब, पाँच अरब रुपये हो जाएँ, (वहाँ)

सिर घूम जाता है। गाँव-गाँव कारखाने, गाँव-गाँव दुकानें। सैकड़ों गाँवों में कारखाने और सैकड़ों गाँवों में दुकानें। जहाँ जाए वहाँ लोग मान दें। पधारो, सेठसाहेब, पधारो सेठसाहेब... आहाहा! उसका भी जिसे अन्दर अभिमान है, उसे आत्मा हाथ नहीं आता।

मुमुक्षु : पैसा हो और पैसेवाला ऐसा माने कि मैं पैसेवाला हूँ, इसमें अभिमान कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभिमान है। वह पैसेवाला कहाँ था? पैसेवाला है या आत्मावाला है? ज्ञानवाला है, दर्शनवाला है, आनन्दवाला है। पैसेवाला है? दुनिया से उल्टा है, भाई!

शास्त्र के क्षयोपशमज्ञान के भी विकास का अभिमान, वह उसे वहाँ रोक रखता है... आहाहा! पाँच-पच्चीस करोड़ श्लोक आये और कण्ठस्थ किये, अर्थात् क्या? अभव्य को भी नौ पूर्व भी आया था, ग्यारह अंग आये थे। भव्य को भी ग्यारह अंग और नौ पूर्व अनन्त बार आ गये। परलक्षी ज्ञान से यह स्वलक्षी ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! आत्मा को नितार दिया है। सबसे रहित है। ऐसे भाव की जिसमें गन्ध नहीं, ऐसे भाव का जिसे मान है, उसे वह आत्मा अनुभव में नहीं आता। आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख, पचास लाख खर्च किये तो उसे मानो... ओहोहो! दुनिया उसे धर्मधुरन्धर कहती है और वह (स्वयं) भी मानता है।

धर्म तो आनन्द है। अन्दर आनन्द की वृद्धि हो और अन्दर आनन्द का उछाला मारे। वह इन सब वासना के अभाव में होता है। ऐसी वासना हो, उसे अन्दर में आनन्द का उछाला मारे—(ऐसा नहीं होता)। एक म्यान में दोनों नहीं रह सकते। आहाहा! यह आलोचना की अन्तिम गाथा है। आलोचना। आत्मा को देखना। आहाहा! उसे यह कहते हैं कि ऐसे भाव होते नहीं।

परित्याग जिसका लक्षण (स्वरूप) है, ऐसे निरंजन निज परमात्मतत्त्व के परिग्रह से... दोनों परिग्रह लिया। इस ओर जितने प्रकार कहे, उस परिग्रह का त्याग है। इस ओर के आत्मा में परिग्रह का ग्रहण है। आहाहा! एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। अभिमान के बहुत प्रकार यह गाँव और एक ओर प्रभु। आहाहा!

ऐसे निरंजन निज परमात्मतत्त्व के परिग्रह से अन्य परमाणुमात्र... आहाहा! **निज परमात्मतत्त्व के परिग्रह से अन्य परमाणुमात्र द्रव्य का स्वीकार...** एक रजकण भी मेरा है, ऐसा स्वीकार। आहाहा! एक लोभ के कण का **स्वीकार, वह लोभ है...** आहाहा! **इन चारों भावों से...** आ गया। क्रोध, मान, माया और लोभ। **चारों भावों से परिमुक्त (-रहित) शुद्धभाव...** ऐसे चार—क्रोध, मान, माया और लोभ। एक राग के रजकण (कण) का भी यदि अभिमान (है तो) वह लोभ है। आहाहा! ऐसे परिग्रह से रहित। है न? और **निज परमात्मतत्त्व के परिग्रह से अन्य परमाणुमात्र द्रव्य का स्वीकार, वह लोभ है।** आहाहा! एक ओर भगवान पूर्णानन्द का स्वीकार तथा एक ओर इस ओर में लोभ के एक अंश का भी स्वीकार, उसे आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। यह आलोचना है, जीव को देखने का स्वभाव ऐसा है। जीव को देखने का ऐसा स्वभाव है कि यह जो सब परिग्रह के प्रकार कहे, उनसे रहित है।

उसका अपना स्वभाव, परमात्मतत्त्व वह कौन? **निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** परमेश्वर भगवान भी नहीं। पंच परमेष्ठी और भगवान भी नहीं। आहाहा! **निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** अपने निरंजन तत्त्व के परिग्रह से **अन्य परमाणुमात्र द्रव्य का स्वीकार वह लोभ है।** आहाहा! **इन चारों भावों से परिमुक्त (-रहित)...** चारों भावों से रहित **शुद्धभाव, वही भावशुद्धि है...** यह जो अभिमान के प्रकार कहे, उन सब प्रकार से रहित है, वह शुद्धभाव **वही भावशुद्धि है...** आहाहा! वही शुद्धभाव और वही भावशुद्धि। चार प्रकार के जो क्रोध, मान, माया, लोभ की बात की, उनसे रहित शुद्धभाव, उनसे रहित शुद्धभाव, वही पर्याय की भावशुद्धि है, वह पर्याय में भावशुद्धि है। उस भाव से रहित और शुद्धचैतन्य के भाव की शुद्धि से सहित, ऐसी भावशुद्धि है।

ऐसा भव्य जीवों को... ऐसी बात भव्य जीवों को। अभव्यों को नहीं। आहाहा! **लोकालोकदर्शी,...** लोक और अलोक को देखनेवाले **परमवीतराग सुखामृत के पान से परितृप्त...** अमृत के स्वाद से पूरे तृप्त। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द के सुख से परितृप्त, पूरे तृप्त, समस्त प्रकार से तृप्त हैं। परितृप्त है न? परि-समस्त प्रकार से पूरे तृप्त हैं, ऐसे **अरहन्त भगवन्तों ने कहा है।** मुनिराज कहते हैं कि मैं कुछ नहीं कहता। आहाहा! अमृत में पूर्ण तृप्त प्राप्त, पूर्ण अमृतस्वरूप के अतीन्द्रिय आनन्द में तृप्ति प्राप्त, ऐसे अरिहन्त भगवन्तों ने यह कहा है। आहाहा!

एक ओर भावशुद्धि का भाव शुद्धभाव तथा एक ओर यह अभाव, अशुद्धभाव, इससे तो प्रभु रहित है। ऐसा श्री भगवान अनन्त सुख से तृप्त हुए प्रभु ने कहा है। कहते समय तो भगवान नहीं थे—टीका करते समय भगवान नहीं थे परन्तु जिनके हृदय में भगवान भासित हुआ है, उसके हृदय में भगवान सदा भासित ही है। आहाहा! वह भगवान उसके हृदय में बसते ही हैं। ऐसे अरिहन्त भगवन्तों ने यह कहा है। आहाहा! भावशुद्धि से जो भावशुद्ध से भावशुद्धि होती है। भावशुद्ध से भावशुद्धि होती है। यह जो अशुद्ध भाव कहे, उनसे यह भावशुद्धि नहीं होती। आहाहा! कठिन काम।

एक ओर निर्मलानन्द प्रभु पूर्ण तथा एक ओर ये सब संसार के विलास की वृत्तियों की विस्मयता, चमत्कार, विशेषता, अधिकता स्वभाव से कुछ (अधिकता) भासित हो, उसे आत्मा का पता नहीं लगता, ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा! उदय से मर गये हैं, उन्हें हाथ आता है, ऐसा है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! उदयभाव से, अशुद्धभाव से तो अशुद्धभाव उत्पन्न होता है। उसे मार डाला है, ऐसे भावशुद्धि से, शुद्धभाव से, वही भावशुद्धि होती है। आहाहा! शब्द थोड़े हैं, भाव बहुत हैं। एक ओर भगवान पूर्ण शुद्ध, उसे पूर्ण जो अशुद्धता का अंश है, किंचित् भी कहीं गर्व है, क्षयोपशमज्ञान की भी विकास की दूसरे की अपेक्षा मुझे अधिकता है, उसे भी वह भावशुद्धि नहीं है, इसलिए शुद्धभाव नहीं है। भावशुद्धि नहीं है, इसलिए शुद्धभाव नहीं है। आहाहा!

श्लोक-१७१

[अब इस परम-आलोचना अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव नौ श्लोक कहते हैं:]

(मालिनी)

अथ जिनपति-मार्गालोचना-भेद-जालं,
परिहृतपरभावो भव्यलोकः समन्तात्।
तदखिलमवलोक्य स्वस्वरूपं च बुद्ध्वा,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।१७१।।

(हरिगीतिका)

जिनवर कथित आलोचना के भेद को जो जानते।
वे भव्यजन सब ओर से परभाव को परित्यागते॥
इन सभी को अवलोकते निजरूप को भी जानते।
वे परमश्रीमय कामिनी के कांतिमय वल्लभ बनें॥१७१॥

[श्लोकार्थः] जो भव्य लोक (भव्यजनसमूह) जिनपति के मार्ग में कहे हुए समस्त आलोचना के भेदजाल को देखकर तथा निज स्वरूप को जानकर सर्व ओर से परभाव को छोड़ता है, वह परमश्रीरूपी कामिनी का बल्लभ होता है (अर्थात् मुक्ति-सुन्दरी का पति होता है)॥१७१॥

श्लोक -१७१ पर प्रवचन

[अब इस परम-आलोचना अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव नौ श्लोक कहते हैं:] लो, पहले में भी नौ (श्लोक) आये थे।

अथ जिनपति-मार्गालोचना-भेद-जालं,
परिहृतपरभावो भव्यलोकः समन्तात्।

तदखिलमवलोक्य स्वस्वरूपं च बुद्ध्वा,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।१७१।।

आहाहा! **[श्लोकार्थः] जो भव्य लोक (भव्यजनसमूह)...** एक वचन यह लिया। **भव्य लोक (भव्यजनसमूह)...** योग्य प्राणियों का समूह। आहाहा! **जिनपति के मार्ग में कहे हुए...** वीतराग के मार्ग में कहे हुए **समस्त आलोचना के भेदजाल को देखकर...** यह भी भेदजाल है, उसे जानकर। निजस्वरूप को जानकर, इस आलोचना की ओर से हट कर देखना। अकेले निजस्वरूप को अवलोकन कर। **सर्व ओर से परभाव को छोड़ता है,...** सर्व ओर से अकेला परमभाव, शुद्धभाव, परमस्वरूप, अमृतस्वरूप, अमृत का सागर, सर्व ओर से परभाव को छोड़ता है, वह निजस्वरूप को जानकर, ऐसा कहा है न? **निज स्वरूप को जानकर सर्व ओर से परभाव को छोड़ता है,...** आहाहा! सर्व ओर से निजस्वरूप को जानकर, सर्व ओर से परभाव को छोड़ता है। आहाहा!

वह परमश्रीरूपी कामिनी का बल्लभ होता है... वह परमश्री अर्थात् केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी। परमश्री—केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी, कामिनी। केवलज्ञानरूपी कामिनी का बल्लभ होता है। अर्थात् उसे केवलज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! सुन्दर लावण्य से सुन्दर स्त्री के लोचन को सुख उपजानेवाले की बजाय यह **परमश्रीरूपी कामिनी का बल्लभ होता है...** आहाहा! **(अर्थात् मुक्ति-सुन्दरी का पति होता है)** आहाहा! आत्मा के पवित्र स्वभाव के अतिरिक्त कोई भी अंश भाव के अभिमान से, अहंकार से, गर्व से, अधिकरूप से चार भाव में कोई भी भाव क्रोध, मान, माया, लोभ को अधिकपने जानने से स्वरूप का अधिकपना हाथ नहीं आता। आहाहा! **सर्व ओर से परभाव को छोड़ता है, वह परमश्रीरूपी कामिनी का बल्लभ होता है (अर्थात् मुक्ति-सुन्दरी का पति होता है)।** आहाहा!

श्लोक-१७२

(वसंततिलका)

आलोचना सततशुद्धनयात्मिका या,
निर्मुक्तिमार्गफलदायमिनामजस्रम् ।
शुद्धात्मतत्त्व-नियता-चरणानुरूपा,
स्यात्संयतस्य मम सा किल कामधेनुः ।।१७२।।

(हरिगीतिका)

जो संयमीजन को सदा शिवमार्ग फल देती अहो।
शुद्धात्मा में नियत चर्या के सदा अनुरूप जो॥
ऐसी निरन्तर शुद्धनयमय जो अहो आलोचना।
मुझ संयमी को वास्तव में कामधेनु रूप हो॥१७२॥

[श्लोकार्थः] संयमियों को सदा मोक्षमार्ग का फल देनेवाली तथा शुद्ध आत्मतत्त्व में *नियत आचरण के अनुरूप ऐसी जो निरन्तर शुद्धनयात्मक आलोचना वह मुझे संयमी को वास्तव में कामधेनुरूप हो॥१७२॥

श्लोक -१७२ पर प्रवचन

१७२ (श्लोक)।

आलोचना सततशुद्धनयात्मिका या,
निर्मुक्तिमार्गफलदायमिनामजस्रम् ।
शुद्धात्मतत्त्व-नियता-चरणानुरूपा,
स्यात्संयतस्य मम सा किल कामधेनुः ।।१७२।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! **संयमियों को...** जिसे आत्मज्ञानसहित संयम प्रगट हुआ है। आहाहा! स्वरूप में जिसकी जमावट जमी है। आनन्द का नाथ ध्रुवस्वरूप भगवान,

* नियत=निश्चित; दृढ़; लीन; परायण। [आचरण शुद्ध आत्मतत्त्व के आश्रित होता है।]

जिसमें जिसकी लीनता / तल्लीनता हुई है, ऐसे **संयमियों को सदा मोक्षमार्ग का फल देनेवाली...** सदा मोक्षमार्ग का फल देनेवाली। आहाहा! **शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत आचरण के अनुरूप...** आहाहा! वरना तो आत्मा मोक्षमार्ग को और मोक्ष को प्राप्त करता है, यह भी पर्यायदृष्टि से कथन है। मोक्षमार्ग से मोक्ष, यहाँ यह न लेकर, मोक्षमार्ग का **सदा मोक्षमार्ग का फल देनेवाली तथा शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत आचरण...** ऐसा लिया। त्रिकाली नहीं लिया। त्रिकाली का आचरण जो है... आहाहा! पर्याय।

संयमियों को सदा मोक्षमार्ग का फल देनेवाली तथा शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत आचरण... दृढ़; लीन; परायण। [आचरण शुद्ध आत्मतत्त्व के आश्रित-लीन होता है।] यह मुनिपना, यह संयम। शुद्ध आत्मा जो पुण्य-पाप के विकल्प और चार कषाय से रहित है, ऐसा आत्मा, उसमें जो लीन है... आहाहा! वह संयमी मुनि है। वह **शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत आचरण के अनुरूप ऐसी जो निरन्तर शुद्धनयात्मक आलोचना...** पर्याय को शुद्धनय कहा। **शुद्धनयात्मक आलोचना वह मुझे—संयमी को वास्तव में कामधेनुरूप हो।** आहाहा! १४वीं गाथा में कहा है न? शुद्धनय कहो, आत्मा कहो, अनुभूति कहो। नहीं तो शुद्धनय तो त्रिकाल है। '**भुदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ जो त्रिकाल है, वह शुद्धनय है परन्तु त्रिकाल के आश्रय से प्रगट हुई दशा को भी यहाँ शुद्धनय कहा जाता है। आहाहा!

नियत आचरण... दृढ़; लीन; परायण। [आचरण शुद्ध आत्मतत्त्व के आश्रित होता है।] आत्मा को अनुरूप ऐसी निरन्तर... आहाहा! निरन्तर—एक समय का अन्तर पड़े बिना। आहाहा! मुनियों को अन्दर निरन्तर संयम वर्तता है। वह आत्मा के अनुरूप आचरण है। रागादि का आचरण, वह प्रतिकूल है। यह अनुरूप आचरण **अनुरूप ऐसी जो निरन्तर शुद्धनयात्मक आलोचना...** शुद्धनयस्वरूप आलोचना—पर्याय, वह... मुनिराज कहते हैं। आहाहा! **वह मुझे संयमी को वास्तव में कामधेनुरूप हो।** जब चाहिए तब कामधेनु गाय दूध देती है। इसी प्रकार निरन्तर मेरे आत्मा की ओर झुकाव है तो चाहिए तब आनन्द आता है। आनन्द का अन्तराल नहीं पड़ता। आहाहा! कामधेनु गाय चाहिए तब दूध देती है। तुम्हारे वढवाण में थी न? चुन्नीभाई दादभा। आहाहा!

यह कामधेनु आत्मा। आत्मा से भी आलोचनावाली शुद्धनय। **शुद्धनयात्मक**

आलोचना वह मुझे... आहाहा! पंचम काल के साधु ९०० वर्ष पहले हो गये हैं, वे स्वयं कहते हैं। आहाहा! अपने को खबर पड़ती है। अभी ऐसा कहते हैं कि निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती, इसलिए व्यवहार समकित रखो। अभी ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि ऐसी **आलोचना वह मुझे संयमी को वास्तव में कामधेनुरूप...** है। समय-समय में आनन्द की प्राप्ति। कामधेनु गाय प्रत्येक समय दूध देती है, वैसे भगवान आत्मा प्रत्येक समय में आनन्द देता है। आहाहा! उसकी ओर के झुकाव के तदनुरूप आचरण से, आत्मा को अनुकूल-अनुरूप आचरण से समय-समय में मुझे संयमी को आनन्द मिलता है। आहाहा! वह कामधेनुरूप हो। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)